महावीर की वाणी का मंगलमय क्रांतिकारी स्वरूप

डा० महावीर शरण जैन

भगवान महावीर ने जिस धर्म एव दशन का प्रचार प्रसार किया; जिस सत्य की सुस्पष्ट व्याख्या की, जिन दार्शनिक प्रतिपत्तिकाओं को सुव्यवस्थित ढ़ग से अभिव्यक्त किया, उनके सूत्र यद्यपि भारतीय प्राक्-वैदिक युग से ही पोषित एवं विकसित होते आये हैं तथापि महावीर ने श्रमण-दर्शन की निग्रन्थ परम्परा में तेईसवें तीर्थंकर तथा ऐतिहासिक व्यक्तित्व पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म के स्थान पर "पंच महाव्रत" का उपदेश देकर तथा आत्मजय की साधना को अपने ही पुरुषार्थ एवं चरित्र से सिद्ध करने की विचारणा को लोकोन्मुख बनाकर भारतीय मनीषा को नया मोड़ दिया। उन्होंने धर्म के उत्कृष्ट मंगलमय स्वरूप की व्याख्या ही नहीं की; "धम्मो मंगलमुविकट्ठं" कहकर धर्म को मंगलमय साधना का पर्याय बना दिया। उनका जीवन आध्यात्मिक चिंतन मनन एवं संयमी जीवन का साक्षात्कार है; निष्कर्मदर्शी के निष्कर्म आत्मा को देखने का दर्पण है; आत्मा को आत्मसाधना से पहचानने का मापदण्ड है: तप द्वारा कर्मों का क्षय करके आत्म स्वभाव में रमण करने की प्रक्रिया है तथा सबसे बड़ी बात यह कि किसी के आगे झुककर अनुग्रह की वैशाखियों के द्वारा आगे बढ़ने की पद्धति नहीं प्रत्युत अपनी ही शक्ति एवं साधना के बल पर जीवात्मा के परमात्मा बनने की वैज्ञानिक प्रयोगशाला है।

भगवान महावीर के युग में भौतिकवादी एव संशयमूलक जीवन दर्शन के मतानुयायी चिन्तकों ने समस्त धार्मिक मान्यताओं, चिर संचित आस्था एवं विश्वास के प्रति प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया था। पूरणकस्सप, मक्खलि गोसाल, अजितकेसकम्बलि, पकुध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्चायन, संजय बैलटि्ठपुत्र आदि के विचारों को पढ़ने पर हमको आभास हो जाता है कि उस युग के जनमानस को संशय, त्रास, अविश्वास, अनास्था, प्रश्नाकुलता आदि वृत्तियों ने किस सीमा तक आबद्ध कर लिया था। ये चिन्तक जीवन में नैतिक एवं आचारमूलक सिद्धान्तों की अवहेलना करने एवं उनका तिरस्कार करने पर बल दे रहे थे। मानवीय सौहार्द एवं कर्मवाद के स्थान पर घोर भोगवादी, अक्रियावादी एवं उच्छेदवादी वृत्तियाँ पनप रही थीं।

इन्हीं परिस्थितियों में भगवान महावीर ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए, अपने ही प्रयत्नों द्वारा उच्चतम विकास कर सकने का आस्थापूर्ण मार्ग प्रशस्त कर अनेकांतवादी जीवन दृष्टि पर आधारित, स्वाद्वाद्वादी कथन प्रणाली द्वारा बहुधर्मी एवं बहुगुणी वस्तु को प्रत्येक कोण, दृष्टि एव संभावनाओं द्वारा उनके वास्तविक रूप में जान पाने एव पहचान पाने का मार्ग बतलाकर सामाजिक जीवन के लिए अपरिग्रहवाद आदि का संदेश दिया।

आज भी भौतिक विज्ञान की चरम उन्नति मानवीय चेतना को जिस स्तर पर ले गयी है वहाँ उसने हमारी समस्त मान्यताओं के सामने प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया है। समाज में परस्पर घृणा एवं अविश्वास तथा तथा व्यक्तिगत जीव में मानसिक तनाव एवं अशान्ति के कारण विचित्र स्थिति उत्पन्न होती जा रही है।

आज के और पहले के व्यक्ति और उसके चिन्तन में अन्तर भी है। सम्पूर्ण भौतिक साधनों एवं जीवन की अनिवार्य वस्तुओं से वंचित होने पर भी पहले का व्यक्ति समाज से लड़ने की बात नहीं सोचता था; भाग्यवाद एवं नियतिवाद के सहारे जीवन को काट देता था। अपने वर्तमान जीवन की सारीं मुसीबतों का कारण विगत जीवन के कर्मों को मान लेता था। अथवा अपने भाग्य का विधाता "परमात्मा" को मानकर उसके प्रति श्रद्धा एवं अनन्यभाव के साथ "अनुराग" एवं "समर्पण" कर संतोष पा लेता था।

आज का व्यक्ति स्वतन्त्र होने के लिए अभिशापित है। आज व्यक्ति परावलम्बी होकर नहीं, स्वतन्त्र निर्णयों के क्रियान्वयन के द्वारा विकास करना चाहता है। अन्धी आस्तिकता एवं भाग्यवाद के सहारे जीना नहीं चाहता अपितु इसी जीवन में साधनों का भोग करना चाहता है; समाज से अपनी सत्ता की स्वीकृति तथा अपने अस्तित्व के लिए साधनों की मांग करता है तथा इसके अभाव में सम्पूर्ण व्यवस्था पर हथौड़ा चलाकर उसे नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहता है।

मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए जब हम उद्यत होते हैं तो हमारा ध्यान धर्म की ओर जाता है। इसका कारण यह है कि धर्म ही ऐसा तत्व है जो व्यक्ति की असीम कामनाओं को सीमित करता है तथा उसकी दृष्टि को व्यापक बनाता है। इस परिप्रेक्ष्य में हमें यह जान लेना चाहिए कि रूढ़िगत धर्म के प्रति आज का मानव किंचित भी विश्वास जुटाने में असमर्थ है। शास्त्रों में यह बात कही गयी है कि केवल इसी कारण आज का मानव एवं विशेष रूप से बौद्धिक समुदाय एवं युवक उसे मानने के लिए तैयार नहीं है।

आज वही धर्म एवं दर्शन हमारी समस्याओं का समाधान कर सकता है जो उन्मुक्त दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा दे सके। भगवान महावीर ने मानवीय एवं वैज्ञानिक सत्यान्वेषण में अनवरत प्रवृत्त श्रमण परम्परा के धार्मिक सूत्रों के सहारे भटके हुए मानव को नवीन दिशा एवं ज्योति प्रदान की। बाहरी प्रदर्शन एवं दिखावे की प्रवृत्तियों पर प्रहार किया। निर्भय होकर घोषणा की कि प्रातः स्नानादि कर लेने से मोक्ष नहीं होता; जो प्रातः संध्या जल स्नान कर लेने से मुक्ति बतलाते हैं वे अज्ञानी हैं, बहुत से मुक्ति बतलाने वाले भी अज्ञानी हैं। बलि देनेवालों के काले कारनामों को उजागर करते हुए उन्होंने घोषणा की कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों को दुःख देना मोक्ष का मार्ग नहीं है। धर्मों के आपसी भेदों के विरुद्ध आवाज उठायी तथा धर्म को आरोपित सीमाओं के घेरे से बाहर लाकर खड़ा किया तथा कहा कि धर्म के पवित्र अनुष्ठान से आत्मा का शुद्धिकरण होता है। धर्म न कहीं गाँव में होता है और न कहीं जंगल में बल्कि वह तो अन्तरात्मा में होता है। उन्होंने धर्म साधनों का निर्णय विवेक और सम्यग् ज्ञान के आधार पर करने की बात कही। जीवात्मा ही ब्रह्म है यह महावीर का अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार था जिसके आधार पर वे यह प्रतिपादित कर सके कि बाह्य जगत की कल्पित शक्तियों के पूजन से नहीं अपितु अन्तरात्मा के दर्शन एवं परिष्कार से ही कल्याण सम्भव है। उनका स्पष्ट मत था कि वेदों के पढ़ने मात्र से उद्धार सम्भव नहीं है। उन्होंने व्यक्ति को सचेत किया कि यदि हृदय में परमाणु मात्र भी राग-द्वेष है तो समस्त आगमों का निष्णात होते हुए भी आत्मा को नहीं जान सकता। उन्होंने आत्मा द्वारा आत्मा को जानने की बात कही।

इस प्रकार महावीर की वाणी ने व्यक्ति की दृष्टि को व्यापक बनाया; चिंतन के लिए सतत् जागरूक भूमिका प्रदान की; आत्म साधना के निगूढ़तम रहस्य द्वारों को वैज्ञानिक ढ़ग से आत्म-बल के द्वारा खोलने की प्रक्रिया बतलायी तथा सहज भाव से सृष्टि के कण-कण के प्रति राग-द्वेष की सीमाओं के परे करुणा एवं अपनत्व की भावभूमि प्रदान की।

धर्म एवं दर्शन का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो प्राणी मात्र को प्रभावित कर सके एवं उसे अपने ही प्रयत्नों के बल पर विकास करने का मार्ग दिखा सके। ऐसा दर्शन नहीं होना चाहिए जो आदमी-आदमी के बीच दीवारें खड़ी करके चले धर्म को पारलौकिक एवं लौकिक दोनों स्तरों पर मानव की समस्याओं के समाधान के लिए तत्पर होना होगा। प्राचीन दर्शन ने केवल अध्यात्म साधना पर बल दिया था और इस लौकिक जगत की अवहेलना हुई थी। आज के वैज्ञानिक युग में बौद्धिकता का अतिरेक व्यक्ति के अर्न्तगत की व्यापक सीमाओं को संकीर्ण करने एवं उसके बहिर्जगत की सीमाओं को प्रसारित करने में यत्नशील है। आज के धार्मिक एवं दार्शनिक मनीषियों को वह मार्ग खोजना है जो मानव की बहिर्मुखता का भी विकास कर सके। पारलौकिक चिन्तन व्यक्ति के आत्म विकास में चाहे कितना ही सहायक हो किन्तु उससे सामाजिक सम्बन्धों की सम्बद्धता, समरसता एवं समस्याओं के समाधान में अधिक सहायता नहीं मिलती है। आज के भौतिक-वादी युग में केवल वैराग्य से काम चलनेवाला नहीं है। आज हमें मानव की भौतिकवादी दृष्टि को सीमित करना होगा; भौतिक स्वार्थपरक इच्छाओं को संयमित करना होगा, मन की कामनाओं में त्याग का रंग मिलाना होगा। आज मानव को एक ओर जहाँ इस प्रकार का दर्शन प्रभावित नहीं कर सकता कि केवल ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है वहाँ दूसरी ओर भौतिक तत्वों की ही सत्ता को सत्य माननेवाला दृष्टिकोण जीवन के उन्नयन में सहायक नहीं हो सकता। आज भौतिकता और आध्यात्मिकता के समत्व की आवश्यकता है। इसके लिए धर्म एवं दर्शन की वर्तमान सामाजिक संदर्भों के अनुरूप एवं भावी मानवीय चेतना के निर्णा-यक रूप में व्याख्या करनी है। इस संदर्भ में आध्या-त्मिक साधना के ऋषियों एवं मुनियों की धार्मिक साधना एवं गृहस्थ सामाजिक व्यक्तियों की धार्मिक साधना के अलग-अलग स्तरों को परिभाषित करना आवश्यक है।

धर्म एवं दर्शन का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिकों की प्रतिपत्तिकाओं को खोजने का मार्ग एवं धार्मिक मनीषियों एवं दार्शनिक तत्व-चिन्तकों की खोज का मार्ग अलग-अलग हो सकता है, किन्तु उनके सिद्धान्तों एवं मूलभूत प्रत्ययों में विरोध नहीं होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज के मनुष्य ने प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था को आदर्श माना है। हमारा धर्म भी प्रजातंत्रात्मक शासन पद्धति के अनुरूप होना चाहिए।

प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त होते हैं ! इस पद्धति के स्वत्रता एवं समानता दो बहुत बड़े जीवन-मूल्य हैं। इसके समानान्तर दर्शन के धरातल पर भी हमें व्यक्ति मात्र की समता एवं स्वतंत्रता का उद्घोष करना होगा।

आज ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो समाज के सदस्यों में परस्पर सामाजिक सौहार्द एव बंधुत्व का वातावरण निर्मित कर सके। यदि यह न हो सका तो किसी भी प्रकार की व्यवस्था एवं शासन पद्धति से समाज में शान्ति स्थापित नहीं हो पायेगी।

इस दृष्टि से हमें यह विचार करना है कि भगवान महावीर ने ढाई हजार वर्ष पूर्व अनेकान्तवादी चिन्तन पर आधारित अपरिग्रहवाद एवं अहिंसावाद से संयुक्त जिस ज्योति को जगाया था उसका आलोक हमारे आज के अंधकार को दूर कर सकता है या नहीं।

परिवर्तित युग के समयानुकूल धर्म एवं दर्शन के संदर्भ में जब हम जैन दर्शन एवं भगवान महावीर की वाणी पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि जैन दर्शन समाज के प्रत्येक मानव के लिए समान अधिकार जुटाता है। सामाजिक समता एवं एकता की दृष्टि से श्रमण परम्परा का अप्रतिम महत्व है। इस परम्परा में मानव को मानव के रूप में देखा गया है; वर्ण, वादों, सम्प्रदायों आदि का लेबिल चिपकाकर मानव को बांटनेवाले दर्शन के रूप में नहीं। मानव महिमा का जितना जोरदार समर्थन जैन दर्शन में हुआ है वह अनुपम है। भगवान महावीर ने आत्मा की स्वतंत्रता की प्रजातंत्रात्मक उद्घोषणा की। उन्होंने कहा कि समस्त आत्मायें स्वतंत्र हैं; प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। उसके गुण और पर्याय भी स्वतंत्र हैं। विवक्षित किसी एक द्रव्य तथा उसके गुणों एवं पर्यायों का अन्य द्रव्य या उसके गुणों और पर्यायों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस दृष्टि से सब आत्मायें स्वतंत्र हैं; भिन्न-भिन्न हैं, पर वे एक-सी अवश्य हैं। इस कारण उन्होंने कहा कि सब आत्मायें समान हैं, पर एक नहीं।

स्वतंत्रता एवं समानता दोनों की इस प्रकार की परस्परावलम्बित व्याख्या अन्य किसी दर्शन में दुर्लभ है।

महावीर ने उस मार्ग का प्रवर्तन किया जिससे व्यक्ति-मात्र अपने ही बल पर उच्चतम विकास कर सकता है; प्रत्येक आत्मा अपने बल पर परमात्मा बन सकती है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि जीव अपने ही कारण से संसारी बना है और अपने ही कारण से मुक्त होगा। व्यवहार से बंध और मोक्ष के हेतु अन्य पदार्थ को जानना चाहिए किन्तु निश्चय से यह जीव स्वयं बंध का हेतु है और स्वयं मोक्ष का हेतु है। आत्मा अपने स्वयं के उपार्जित कर्मों से ही बँधती है। आत्मा का दुख स्वकृत है किन्तु व्यक्ति अपने ही प्रयास से उच्चतम विकास भी कर सकता है क्योंकि आत्मा सर्वकर्मों का नाश कर सिद्धलोक में सिद्धपद प्राप्त करने की क्षमता रखती है।

इसी कारण भगवान ने उद्घोष किया कि पुरुष तू स्वयं ही अपना मित्र है 'पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं।' उन्होंने जीव मात्र को आस्था एवं विश्वास का अमोघ मंत्र दिया, कि बंधन से मुक्त होना तुम्हारे ही हाथ में है।

किन्तु इसके लिए आत्मार्थी साधक को जितेन्द्रिय होना पड़ता है; समस्त प्रकार के परिग्रहों को छोड़ना पड़ता है; रागद्वेष रहित होना पड़ता है। सत्य के साधक को बार-बार बाहरी प्रलोभन अभिभूत करते रहते हैं। साधना का पथ बार-बार विलासिता की रंगीन चादर ओढ़ना चाहता है। धर्म की आड़ में अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ की सिद्धि चाहनेवाले दलाल आध्यात्म के सत्य को भौतिकवादी व्यवस्थाओं से बार-बार ढँकने का प्रयास करते हैं। शताब्दी में एकाध व्यक्ति ही ऐसे होते हैं जो धर्म के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड, कदाचार, अमानवीयता पर प्रहार कर वास्तविक सत्य का उद्घाटन करते हैं। उपनिषद्कार के युग में भी याज्ञिक धर्म की विकृतियाँ इतनी उजागर हो गई थीं कि उसे कहना पड़ा कि अमृत तत्व सोने के पात्र से ढँका हुआ है। मध्ययुगीन संतो ने भी धर्म के बाह्याडम्बरों पर चोट की। सन्त नामदेव ने 'पाखण्ड भगति राम नहीं रीझै' कहकर धर्म के तात्विक स्वरूप की ओर ध्यान आकृष्ट किया तो कबीर ने 'जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ' का आह्वान कर साधना पथ पर द्विधारहित संशयहीन मनःस्थिति से कामनाओं का सर्वथा त्याग कर आगे बढ़ने की बात कही। पंडित लोग पढ़-पढ़कर वेद बखानते हैं, किन्तु उसकी सार्थकता क्या है? जीवन की चरितार्थता तो इसमें है कि आत्मविचार पूर्वक समदृष्टि की साधना की जावे और ऐसी साधना के बल पर ही दादूदयाल यह कहने में समर्थ हो सके कि "काया अन्तर पाइया, सब देवन को देव।" उपनिषदों में जिस 'तत्वमासे' सिद्धान्त का उल्लेख हुआ है जैन-दर्शन में उसी विचारणा की विकसित एव नवरूपायित अभिव्यक्ति है जहां प्राणी मात्र की स्वतंत्रता, समता एवं स्वावलम्बित स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है।" संसार में अनन्त प्राणी हैं और उनमें से प्रत्येक में जीवात्मा विद्यमान है। कर्मबंध के फलस्वरूप जीवात्मायें जीवन की नाना दशाओं, नाना योनियों, नाना प्रकार के शरीरों एवं अवस्थाओं में परिलक्षित होती हैं किन्तु सभी में ज्ञानात्मक विकास के द्वारा उच्चतम विकास की समान शक्तियाँ निहित हैं।

जब सभी प्राणी अपनी मुक्ति चाहते हैं तथा स्वयं के प्रयत्नों से ही उस मार्ग तक पहुँच सकते हैं तथा कोई किसी के मार्ग में तत्वतः बाधक नहीं तब फिर किसी से संघर्ष का प्रश्न ही कहाँ उठता है? शारीरिक एवं मानसिक विषमताओं का कारण कर्मों का भेद है। जीवन शरीर से भिन्न एवं चैतन्य का कारण है। जब सर्व कर्मों का क्षय होता है तो प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान, अनन्त श्रद्धा एवं अनन्त शक्ति से स्वतः सम्पन्न हो जाता है। महावीर ने व्यक्ति के चरम पुरुषार्थ को ही नहीं जगाया; प्रज्ञा, विवेक एवं आचरण के बल पर अध्यात्म पथ का अनुवर्तन करनेवाले धार्मिक मानव को देवताओं का भी उपास्य बना दिया। उन्होंने कहा कि अहिंसा, संयम एवं तप रूप धर्म की साधना करनेवाले साधक को देवता भी नमस्कार करते हैं।

इसके अतिरिक्त जैन दर्शन में अहिंसावाद पर आधारित, क्षमा-मैत्री, स्वसंयम तथा परप्राणियों को आत्म तुल्य देखने की भावना पर बहुत बल दिया गया है। आत्म स्वरूप को पहचानने में अपने को गलाना पड़ता है, ममत्व भाव को त्यागना पड़ता है और उस स्थिति में आत्मा को जानने का अर्थ 'सम्भाव' हो जाना होता है।

आत्मानुसंधान प्रक्रिया में यदि व्यक्ति अपने को संसार की पूजा-प्रतिष्ठा का अधिकारी मान बैठता है तो साधना का दम्भ सारी तपस्या को निष्फल कर देता है। उसे सदैव संयत, सुव्रत, तपस्वी एवं आत्म-गवेषक रहना चाहिये। सतत् आत्मानुसधान ही साधना है। ऐसे साधक के मन में अपनी प्रशंसा सुनने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता क्योंकि वह सत्कार तथा पूजा-प्रतिष्ठा की इच्छा ही नहीं रखता, नमस्कार तथा वंदना कराने की भावना ही नहीं रखता 'स्व' को पूरी तरह से त्यागकर आत्म-गवेषक एक को जानकर सब को जान लेता है। एक को जानने का अर्थ ही है सबको जानना तथा सबको जानना ही एक को जानना है। यह दर्शन साधना की परम्परा अविछिन्न रही और इसने 'इकाई' को परम परमार्थता, अनन्तता एवं सर्वव्यापकता के गुण प्रदान किये। जब शंकराचार्य 'अहं ब्रम्हास्मि' की बात करते हैं या कबीर "मैं सबहिन्ह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिं औरनि में हूँ सब" का स्वर गुंजाते हैं तो जैन दर्शन की इस विचारधारा के समीप पहुँच जाते हैं जहाँ जीव ही परमेश्वर हो जाता है। इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ शंकराचार्य एवं कबीर पिण्ड में ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्ड में पिण्ड की बात करते हैं वहाँ जैन दर्शन में आत्मायें अनन्तानन्त हैं तथा परिणामी स्वरूप हैं किन्तु चेतना स्वरूप होने के कारण एक जीवात्मा अपने रूप में रहते हुए भी ज्ञान के अनन्त पर्यायों का ग्रहण कर सकती है।

व्यक्ति की इच्छायें आकाश के समान अनन्त हैं। आत्मार्थी साधक आभ्यन्तर एवं वाह्य दोनों परिग्रहों को त्याग देता है। कामनाओं का अन्त करना ही दुख का अन्त है—

उस स्थिति में साधक को वस्तु के प्रति ममत्व भाव नहीं रह जाता। अपने शरीर से भी ममत्व छूट जाता है।

उसी स्थिति में साधक की दृष्टि विस्तृत से विस्तृत-तर होती है और उसे पता चलता है कि स्वरूपत. सभी आत्मायें एक हैं।

इसी कारण भगवान ने समस्त जीवों पर मैत्रीभाव रखने एवं समस्त संसार को समभाव से देखने का निर्देश किया। 'श्रमण' की व्याख्या करते हुए उसकी सार्थकता समस्त प्राणियों के प्रति समदृष्टि रखने में बतलायी। समभाव की साधना व्यक्ति को श्रमण बनाती है।

भगवान ने कहा कि जाति की कोई विशेषता नहीं; जाति और कुल से त्राण नहीं होता; प्राणी मात्र आत्म-तुल्य है। इस कारण प्राणियों के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो; आत्मतुल्य समझो, सबके प्रति मैत्री भाव रखो, समस्त संसार को समभाव से देखो। समभाव के महत्व का प्रतिपादन उन्होंने यह कहकर किया कि आर्य महापुरुषों ने इसे ही धर्म कहा।

अपने को बाँधकर ही प्रेम का विस्तार होता है। यह कर्मों का बंधन नहीं; संयम का सहज आचरण है। मन के कपाट खुल जाते हैं; जगत के समस्त जीवों में अपनी आत्मातुल्यता दृष्टिगत होने लगती है; राग-द्वेष की सीमाओं से ऊपर उठकर व्यक्ति सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन एवं सम्यग् चारित्र्य से युगों-युगों के कर्म-बंधन काट फेंकता है। इसी कारण भगवान ने कहा कि जो ज्ञानी आत्मा इस लोक में छोटे-बड़े सभी प्राणियों को आत्मतुल्य देखते हैं, षटद्रव्यात्मक इस महान् लोक का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हैं तथा अप्रमत्त-भाव से संयम में रत रहते हैं— वे ही मोक्ष के अधिकारी हैं। इसी कारण आचार्य समन्तभद्र ने भगवान महावीर के उपदेश को "सर्वोदय तीर्थ" कहा है।

आधुनिक बौद्धिक एवं तार्किक युग में दर्शन ऐसा होना चाहिये जो आग्रह-रहित दृष्टि से सत्यान्वेषण की प्रेरणा दे सके। इस दृष्टि से जैन-दर्शन का अनेकान्त-वाद व्यक्ति के अहंकार को झकझोरता है; उसकी आत्यन्तिक दृष्टि के सामने प्रश्नवाचक चिन्ह लगाता है। अनेकान्तवाद यह स्थापना करता है कि प्रत्येक पदार्थ में विविध गुण एवं धर्म होते हैं। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार सामान्य व्यक्ति द्वारा एकदम सम्भव नहीं हो पाता। अपनी सीमित दृष्टि से देखने पर हमें वस्तु के एकाँगी गुण-धर्म का ज्ञान होता है। विभिन्न कोणों से देखने पर एक ही वस्तु हमें भिन्न प्रकार की लग सकती है तथा एक स्थान से देखने पर भी विभिन्न दृष्टाओं की प्रतीतियाँ भिन्न हो सकती हैं। भारत में जिस क्षण कोई व्यक्ति "सूर्योदय" देख रहा है, संसार में दूसरे स्थल से उसी क्षण किसी व्यक्ति को 'सूर्यास्त" के दर्शन होते हैं। व्यक्ति एक ही होता है—उससे विभिन्न व्यक्तियों के अलग-अलग प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। एक ही वस्तु में परस्पर दो विरुद्ध धर्मों का अस्तित्व सम्भव है। इसमें अनिश्चितता की मन:स्थिति बनाने की बात नहीं है; वस्तु के सापेक्ष दृष्टि से विरोधी गुणों को पहचान पाने की बात है। सार्वभौमिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से देखने पर जो तत्स्वरूप है, एक है, सत्य है, नित्य है, वही सीमित एवं व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर अतत्, अनेक, असत्य एवं अनित्य है ।

पदार्थ को प्रत्येक कोण से देखने का प्रयास करना चाहिये। हम जो कह रहे हैं—केवल यही सत्य है—यह हमारा आग्रह है। हम जो कह रहे हैं—यह भी अपनी दृष्टि से ठीक हो सकता है। हमें यह भी देखना चाहिये कि विचार को व्यक्त करने का हमारे एवं दूसरे व्यक्तियों के पास जो साधन है उसकी कितनी सीमाएं हैं। काल की दृष्टि से भाषा के प्रत्येक अवयव में परिवर्तन होता रहता है। क्षेत्र की दृष्टि से भाषा के रूपों में अन्तर होता है। हम जिन शब्दों एवं वाक्यों से संप्रेषण करना चाहते हैं उसकी भी कितनी सीमाएं हैं। "राधा गाने वाली है" इसका अर्थ दो श्रोता अलग-अलग लगा सकते हैं। प्रत्येक शब्द भी "वस्तु" को नहीं किसी वस्तु के भाव को बतलाता है जो वक्ता एवं श्रोता दोनों के सन्दर्भ में बुद्धिस्थ मात्र होता है। "प्रत्येक व्यक्ति अपने घर जाता है" किन्तु प्रत्येक का "घर" अलग होता है। संसार में एक ही प्रकार की वस्तु के लिए कितने भिन्न शब्द हैं—इसकी निश्चित संख्या नहीं बतलायी जा सकती। एक ही भाषा में एक ही शब्द भिन्न अर्थों और अर्थ-छायाओं में प्रयुक्त होता है, इसी कारण अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति न करा पाने पर वक्ता को श्रोता से कहना पड़ता है कि मेरा यह अभिप्राय नहीं था अपितु मेरे कहने का मतलब यह था—दूसरे के अभिप्राय को न समझ सकने के कारण इस विश्व में कितने संघर्ष होते हैं? स्याद्वाद वस्तु के विरोधी गुणों की प्रतीतियों द्वारा उसके अन्तिम सत्य तक पहुंच सकने की क्षमता एव पद्धति प्रदान करता है। जब कोई व्यक्ति खोज के मार्ग में किसी वस्तु के सम्बन्ध में अपने "सन्धान" को अन्तिम मानकर बैठ जाना चाहता है, तब स्याद्वाद संभावनाओं एवं शक्यताओं का मार्ग प्रशस्त कर अनुसन्धान की प्रेरणा देता है। स्याद्वाद केवल सम्भावनाओं को ही व्यक्त करके अपनी सीमा नहीं मान लेता प्रत्युत समस्त सम्भावित स्थितियों की खोज करने के अनन्तर परम एवं निरपेक्ष सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास करता है।

स्याद्वादी दर्शन में "स्यात्" "निपात" "शायद", "सम्भवतः", "कदाचित्" का अर्थवाहक न होकर समस्त सम्भावित सापेक्ष्य गुणों एवं धर्मों का बोध कराकर ध्रुव एवं निश्चय तक पहुंच पाने का वाहक है; "व्यवहार" में वस्तु में अन्तर्विरोधी गुणों की प्रतीति कर लेने के उपरान्त "निश्चय" द्वारा उसको उसके समग्र एवं अखण्ड रूप में देखने का दर्शन है। हाथी को उसके भिन्न-भिन्न खण्डों से देखने पर जो विरोधी प्रतीतियाँ होती हैं उसके अनन्तर उसको उसके समग्र रूप में देखना है। इस प्रकार यह संदेह उत्पन्न करनेवाला दर्शन न होकर सन्देहों का परीक्षण करने के उपरान्त उनका परिहार कर सकनेवाला दर्शन है। यह दर्शन तो शोध की वैज्ञानिक पद्धति है। "विवेच्य" को उसके प्रत्येक स्तरानुरूप विश्लेषित कर विवेचित करते हुए वर्गबद्ध करने के अनन्तर संश्लिष्ट सत्य तक पहुँचने की विधि है। विज्ञान केवल जड़ का अध्ययन करता है। स्याद्वाद ने प्रत्येक सत्य की खोज की पद्धति प्रदान की है। इस प्रकार यदि हम प्रजातन्त्रात्मक युग में वैज्ञानिक ढंग से सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो अनेकान्त से दृष्टि लेकर स्याद्वादी प्रणाली द्वारा ही वह कर सकते हैं।

महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन का सापेक्षवाद एवं जैन-दर्शन का अनेकान्तवाद वैचारिक धरातल काफी निकट है। आइन्स्टीन मानता है कि विविध सापेक्ष्य स्थितियों में एक ही वस्तु में विविध विरोधी गुण पाये जाते हैं। "स्यात्" अर्थ की दृष्टि से "सापेक्ष्य" के सबसे निकट है।

आइन्स्टीन के मतानुसार सत्य दो प्रकार के होते हैं—(1) सापेक्ष्य सत्य, और (2) नित्य सत्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आइन्स्टीन के मतानुसार हम केवल सापेक्ष सत्य को जानते हैं; नित्य सत्य का ज्ञान तो सर्व विश्वदृष्टा को ही हो सकता है।

जैनदर्शन एकत्व एवं नानात्व दोनों को सत्य मानता है। अस्तित्व की दृष्टि से सब द्रव्य एक हैं, अतः एकत्व भी सत्य है; उपयोगिता की दृष्टि से द्रव्य अनेक हैं अतः नानात्व भी सत्य है।

वस्तु के गुण-धर्म चाहे नय-विषयक हो चाहे प्रमाण- विषयक, वे सापेक्ष होते हैं। वस्तु को अखण्ड भाव से जानना प्रमाण-ज्ञान है तथा वस्तु के एक अंश को मुख्य करके जानना नयज्ञान है।

विज्ञान की जो अध्ययन-प्रविधि है, जैन-दर्शन में ज्ञानी की वही स्थिति है। जो नय-ज्ञान का आश्रय लेता है वह ज्ञानी है। अनेकान्तात्मक वस्तु के एक-एक अंश को ग्रहण करके ज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता चलता है। एकान्त के आग्रह से मुक्त होने के लिए यही पद्धति ठीक है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने जिस जीवन-दर्शन को प्रतिपादित किया है, वह आज के मानव की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों तरह की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान है। यह दर्शन आज की प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एवं वैज्ञानिक सापेक्षवादी चिन्तन के भी अनुरूप है। इस सम्बन्ध में सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का यह वाक्य कि "जैन-दर्शन सर्वसाधारण को पुरोहित के समान धार्मिक अधिकार प्रदान करता है" अत्यन्त संगत एवं सार्थक है। "अहिंसा परमो धर्मः" को चिन्तन-केन्द्रक मानने पर ही ससार युद्ध एवं हिंसा का वातावरण समाप्त हो सकता है। आदमी के भीतर की अशान्ति, उद्वेग एवं मानसिक तनावों को यदि दूर करना है और अन्ततः मानव के अस्तित्व को बनाये रखना है तो भगवान् महावीर की वाणी को युगीन समस्याओं एवं परिस्थितियों के संदर्भ में व्याख्यायित करना होगा। यह ऐसी वाणी है जो मानव-मात्र के लिए समान मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है; सापेक्षवादी सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्था का चिन्तन प्रस्तुत करती है; पूर्वाग्रह-रहित उदार दृष्टि से एक-दूसरे को समझने और स्वयं को तलाशने-जानने के लिए अनेकान्तवादी जीवन दृष्टि प्रदान करती है; समाज के प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार एवं स्व-प्रयत्न से विकास करने का साधन जुटाती है।

☐ ☐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org